परवर्ती काव्यशास्त्रीय चिंतन में 'रीति'

डॉ. सर्वेश्वर प्रताप सिंह
सहायक आचार्य
श्री महंथ रामाश्रय दास पीजी कॉलेज, भुड़कुड़ा,
गाजीपुर उ.प्र.

आचार्य वामन के उपरांत रीति विषयक चिंतन में महत्वपूर्ण परिवर्तन आया। परवर्ती काल में रीति के स्थान पर गुण को अधिक महत्व मिला और रीति को काव्यभाषा की संरचना से बद्ध माना गया। रीति सम्बन्धी इस विचार को आनंदवर्द्धन के 'ध्वन्यालोक' में देखा जा सकता है जिसमें आनंदवर्द्धन रीति के लिए समासाश्रित 'संघटना' शब्द का प्रयोग करते हुए लिखते है -

असमासा समासेन मध्यमेन च भूषिता। तथा दीर्घसमासेति त्रिधा सङ्घटनोदिता॥ और संघटना को गुण का सहायक मानते हुए लिखते हैं- **गुणानाश्रित्य तिष्ठन्ती माधुर्यादीन् व्यनक्ति सा।** रसान्, अर्थात् माधुर्य आदि गुणों को आश्रय करके स्थित हुई वह (संघटना) रसों को अभिव्यक्त करती है। ।।169।। परन्तु आनंदवर्द्धन गुण को न तो संघटना रूप मानते हैं और न ही संघटनाश्रित– **तस्मान्न संघटनास्वरूपाः, न च संघटनाश्रया गुणाः।** इस प्रकार संघटना आश्रय गुण के आश्रित हैं।

आनंदवर्द्धन गुण को अंगी रस का आवश्यक धर्म मानते हैं और अलंकार को बाह्य सौन्दर्य का परिचायक। इस सन्दर्भ में आनंदवर्द्धन लिखते हैं– **तमर्थमवलम्बन्ते येऽङ्गिनं ते गुणाः स्मृताः। अङ्गाश्रितास्त्वलङ्कारा मन्तव्याः कटकादिवत् ॥** अर्थात् जो उस प्रधानभूत (रस) का अवलम्बन करते हैं डरस के आश्रय रहते हैं. वे गुण कहलाते हैं और जो उसके अंग डशब्द और अर्थ.के आश्रित रहते हैं वे कटक, कुंडल आदि के समान अलंकार कहलाते हैं।

अभिनवगुप्त ने 'संघटना' को व्याख्यायित करते हुए लिखा है – **शब्दसंघटना धर्मा रीतिः** और इसके तीन भेद- दीप्त, ललित और मध्य- करते हैं ।

राजशेखर ने 'काव्यमीमांसा' में प्रवृत्ति, वृत्ति और रीति के अंतर को स्पष्ट करते हुए रीति को वामन की भांति वचन शैली मानते हैं और लिखते हैं - **तत्र वेषविन्यासक्रमः प्रवृत्तिः, विलासविन्यासक्रमो वृत्तिः, वचनविन्या-सक्रमो रीतिः।**

* **तथाविधाकल्पयापि तथा यादवांशावादीवृताः समासवदनुप्रासवद्योगवृत्तिपरम्परागर्भ (वाक्यं) जगाद सा गौडीया रीतिः।** अर्थात्, समासबहुल, योगवृत्ति और परंपरागर्भ वाक्य से युक्त रीति गौडी रीति होती है ।

* **तथाविधाकल्पयापि तया यदीषद्वशंवदीकृत ईषदसमासमीषदनुप्रासमुपचारगर्भंच (वाक्यं) जगाद सा पाञ्चाली रीतिः।** अर्थात्, किंचित सामासिक, किंचित आनुप्रासिक और उपचारपूर्ण वाणी पांचाली की विशेषता है।

* **तां थे मुनय गति समानं पूर्वेण यदत्यर्थं च से तया वशंवदीकृतः स्थानानुप्रासवदसमासं योगवृत्तिगर्भ च (वाक्यं) जगाद सावैदर्भी रीतिः।** अर्थात्, युक्तानुप्रासिक, समासरहित और व्यंजक वाक्य प्रयोग वैदर्भी की विशेषता है ।

भारतीय काव्यशास्त्र में रीति ही एक ऐसा काव्य-तत्त्व है जिसके सम्बन्ध में भारतीय काव्यशास्त्रीय परंपरा में कई प्रस्थान-बिंदु आते हैं जिसके सन्दर्भ में वी. राघवन लिखते हैं – 'the history of the concept of Riti has three stages : first, when it was a living geographical mode of literary criticism; second, it lost the geographical association and came to be a stereotyped and standardised with reference to subject; third, its re-interpretation by Kuntaka, the only Sanskrit Alankarika, who with his fine literary instinct and originally as evidenced on many other lines also, related

the Riti to the character of the poet and displaced ritits by new ones.' (स्टडीज ऑन सम कॉन्सेप्ट्स ऑफ़ द अलंकार शास्त्र, वी. राघवन, प्रिंटेड बाई सी. सुब्बारायडू द वसंता प्रेस, अड्यार मद्रास, पृ. 131)

डॉ. राघवन के अनुसार आचार्य कुंतक ने रीति की अवधारणा के सन्दर्भ में अपने मौलिक चिन्तन का योग दिया। कुंतक के पूर्व रीति चिंतन का आधार वस्तुपरक-सौन्दर्य था जिसको कुंतक ने भामह और दंडी के अनुकरण पर 'मार्ग' नाम दिया। कुंतक ने रीति में कवि के आत्मतत्त्व का समावेश करते हुए 'कवि-स्वभाव' से सम्बद्ध किया। इस तरह से कुंतक का रीति विषयक चिंतन पाश्चात्य 'स्टाइल' (शैली) के निकट है। पाश्चात्य काव्य-चिंतन में शैली की अवधारणा में कवि-व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति का प्रभाव स्पष्ट रूप से स्वीकार किया गया है।

आचार्य कुंतक ने रीति को 'कविप्रस्थानहेतवः' माना और इसके तीन भेद किए –

संप्रति तत्र ये मार्गाः कविप्रस्थानहेतवः।
सुकुमारो विचित्रश्च मध्यमश्चोभयात्मकः।।24।।

अर्थात्, रीति (मार्ग) के सुकुमार, विचित्र और मध्यम तीन भेद हैं और जिनका आधार देशविशेष की प्रवृत्ति न होकर कवि-स्वाभाव है-

'कविस्वभावभेदनिबन्धनत्वेन
काव्यप्रस्थानभेदः समञ्जसतां गाहते।'

आचार्य मम्मट ने रीति के लिए 'वृत्ति' शब्द का प्रयोग किया जिसको वृत्यानुप्रास में समाहित करते हुए लिखा है –

माधुर्यव्यञ्जकैर्वर्णैरूपनागरिकोच्यते।
ओजः प्रकाशकैस्तैस्तैस्तु परुषा।
उभयान्नापि प्रागुदाहृतम्।
कोमला परैः।
परैः शेषैः तामेव केचिद् ग्राम्येति वदन्ति।

अर्थात्, माधुर्य अभिव्यंजक वर्णों से युक्त वृत्ति को उपनागरिका वृत्ति, ओज प्रकाशक वर्णों से युक्त वृत्ति को परुषा वृत्ति, और माधुर्य और ओज के प्रकाशक वर्णों के अतिरिक्त वर्णों से युक्त वृत्ति को कोमला वृत्ति, जिसे कुछ लोग 'ग्राम्या' भी कहते हैं।

आचार्य विश्वनाथ का मत है कि वामन के द्वारा मान्य काव्य की आत्मा रीति सही नहीं है अपितु काव्य का जीवित रस है और रीति इसी रस की परिपोषिका है। आचार्य विश्वनाथ ने रीति को 'पदसंघटना' नाम दिया और कहा है कि- पदसंघटना रीतिरङ्गसंस्थानविशेषवत्। उपकर्त्री रसादीनां । और रुद्रट के मत का अनुसरण करते हुए सामासिक रचना के आधार पर विश्वनाथ ने भी चार रीतियाँ माना –

1) वैदर्भी - ललित पदरचना और समासविहीन (एकाध सामासिक पद से हानि नहीं)

2) गौडी - समासबहुल और ओजगुण अभिव्यंजक वर्णों से युक्त

3) पांचाली – वैदर्भी और गौडी का सम्मिश्रण

4) लाटी – वैदर्भी और पांचाली का सम्मिश्रण

आचार्य शिंगभूपाल ने रीति को विशेष (वक्रतायुक्त) पद-विन्यास (शैली) माना है और इसके तीन भेद स्वीकार किए हैं – कोमला, कठिना और मिश्रा।

रीतिः स्यात् पदविन्यासभंगी सा त्रिधा मता।227।

कोमला कठिना मिश्रा चेति स्यात् तत्र कोमला।228।

अतः स्पष्ट है कि रीति विषयक मान्यता भारतीय काव्यशास्त्रीय चिंतन का मुख्य अंग रहा है और काव्य-चिंतन की इस यात्रा में 'रीति' को निर्भान्त रूप से अलंकार की अपेक्षा महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ ।

सन्दर्भ ग्रन्थ –

1 ध्वन्यालोक – आनंदवर्द्धन

2 काव्यप्रकाश – मम्मट

3 साहित्यदर्पण – विश्वनाथ

4 रसार्णव सुधाकर – शिङ्गभूपाल

5 स्टडीज ऑन सम कॉन्सेप्ट्स ऑफ़ द अलंकार शास्त्र, वी. राघवन

***